भाग: 6

प्रायोगिक त्रुटि ने ऑक्सीजन की खोज को टाला

सुशील जोशी

ऑक्सीजन की खोज की चर्चा करते हुए इस बात को थोड़ा विस्तार से समझना उपयोगी होगा कि उस समय शोधकर्ता ऑक्सीजन की पहचान और मापन के लिए क्या तरीका अपनाते थे। आखिर जब आप अलग-अलग वायुओं की तुलना करना चाहते हैं, तो मात्र इस आधार पर तो नहीं कर सकते कि मोमबत्ती की लौ कितनी तेज़ रही या जन्तु कितनी देर तक जीवित रहा। जन्तु-जन्तु में फर्क होते हैं। इसलिए ऑक्सीजन (या जो भी नाम दें) को पहचानने के लिए प्रिस्टले ने 'नाइट्रस वायु परीक्षण' विकसित किया था। प्रिस्टले ने कुछ ही वर्षों पहले नाइट्रोजन का एक ऑक्साइड बनाया था। यह आजकल की भाषा में नाइट्रिक ऑक्साइड (NO) था मगर उस समय इसे 'नाइट्रस वायु' कहा जाता था। नाइट्रस वायु पानी में अघुलनशील रंगहीन गैस थी। जब इसे हवा के साथ मिलाया जाता था तो एक लाल गैस बनती थी जो पानी में घुलनशील होती थी। प्रिस्टले ने पता लगा लिया था कि जिस हवा में मोमबत्ती जलकर बुझ चुकी हो, उसमें नाइट्रस वायु मिलाने से लाल गैस नहीं बनती है। वर्तमान जानकारी के सन्दर्भ में देखें तो रासायनिक क्रिया को निम्नानुसार लिखा जा सकता है:

$$2NO + O_2 \rightarrow 2NO_2$$

नाइट्रस वायु ऑक्सीजन लाल गैस

चूँकि लाल गैस पानी में घुलनशील है, इसलिए यदि इस क्रिया को पानी के ऊपर किया जाएगा तो आयतन में कमी आना लाज़मी है।

यदि शुद्ध ऑक्सीजन और नाइट्रस वायु ली जाए तो क्रिया के बाद आयतन शून्य हो जाएगा। साधारण हवा में ऑक्सीजन करीब एक बटा पाँच होती है। लिहाज़ा, जब हवा और नाइट्रस वायु को मिलाया जाएगा तो काफी सारी गैस बची रहेगी।

प्रिस्टले ने इस क्रिया का उपयोग यह जानने के लिए किया कि हवा कितनी 'अच्छी' है।

आयतन में अधिकतम कमी तब होती है, जब 1 इकाई आयतन नाइट्रस वायु को हवा के दो इकाई आयतन के साथ पानी की उपस्थिति में मिलाया जाता था। यानी कुल आयतन हो गया 3 इकाई। ऐसा करने पर कुछ ही मिनटों बाद कुल आयतन सिर्फ 1.8 इकाई रह जाता था। यानी आयतन में कमी नाइट्रस वायु के कुल आयतन और करीब 20 प्रतिशत ज़्यादा के बराबर होती थी। यदि हवा बिलकुल 'खराब' हुई तो क्रिया पूरी होने के बाद कुल आयतन नाइट्रस वायु के प्रारम्भिक आयतन और हवा के आयतन के योग के बराबर (3 इकाई) होगा। इन दो परिस्थितियों के बीच हुई आयतन में कमी हवा के 'अच्छेपन' का माप बन गई। यह परीक्षण काफी मशहूर था और लगभग सारे रसायनज्ञ इसका उपयोग करते थे।

तो ज़रा इस परीक्षण के उपयोग के परिणामों को देखें। परीक्षण यह है कि जो भी वायु आपके पास है, उसका 2 लीटर लीजिए, उसमें 1 लीटर नाइट्रस वायु मिलाइए। पूरे मिश्रण को पानी के सम्पर्क में रखिए। आयतन में कमी आएगी। यदि आयतन घटकर 1.8 लीटर रह जाए तो वह वायु साधारण हवा जैसी है। वास्तविक प्रयोग में जब शुद्ध ऑक्सीजन (2 लीटर) में 1 लीटर नाइट्रस वायु मिलाई जाती तो शेष आयतन लगभग उतना ही बचता था (करीब 1.6 लीटर) जितना साधारण हवा के साथ बचता है।

मज़ेदार बात यह है कि दोनों मामलों में यह शेष बची गैस अलग-अलग होती थी। जहाँ हवा के साथ प्रयोग करने पर जो गैस बचती थी वह नाइट्रोजन होती थी, वहीं शुद्ध ऑक्सीजन के साथ प्रयोग करने पर बची हुई गैस ऑक्सीजन ही होती थी। मगर यदि आप हर बार 2 लीटर वायु लेकर उसमें 1 लीटर नाइट्रस वायु मिलाएँगे, और सिर्फ यह देखेंगे कि बची हुई हवा का आयतन कितना है तो ज़ाहिर है आप गलत निष्कर्ष पर पहुँचेंगे। क्योंकि साधारण हवा के साथ प्रयोग में बची हुई गैस का आयतन होगा 1.8 लीटर और शुद्ध ऑक्सीजन के साथ प्रयोग में बची हुई वायु का आयतन होगा 1.6 लीटर। इनमें बहुत ज़्यादा अन्तर नहीं है।

लिहाज़ा, जब प्रिस्टले और लेवॉज़िए ने पारद भस्म या सॉल्टपीटर को गर्म करके वायु बनाई और उस पर नाइट्रस परीक्षण लागू किया तो दोनों ही इस गलत निष्कर्ष पर पहुँचे कि सॉल्टपीटर से जो वायु प्राप्त हुई है वह साधारण हवा ही है। दोनों ही आयतन में उक्त थोड़े-से फर्क को पकड़ने में असफल रहे थे।

दोनों मामलों में जो प्रमुख अन्तर था वह शेष बची गैस के गुणधर्मों में था। पहले मामले में (यानी साधारण हवा के मामले में) जो वायु शेष रहती

है वह मूलतः नाइट्रोजन है जिसमें थोड़ी-सी नाइट्रस वायु मिली होगी। दूसरे मामले में शेष बची वायु ऑक्सीजन है। यदि इसमें मोमबत्ती जलाने का प्रयास किया जाता तो दूध का दूध, पानी का पानी हो जाता मगर यह बात न तो लेवॉज़िए को सूझी न प्रिस्टले को। या शायद थोड़ी और नाइट्रस वायु मिलाई जाती तो भी बात साफ हो जाती।

शुरुआत में दोनों शोधकर्ता गलत रास्ते पर मुड़ गए। इससे साफ है कि विज्ञान की तरक्की के लिए महज़ 'तथ्य एकत्रित करना, तथ्यों का वर्गीकरण करना, नियम प्रतिपादित करना, और नियमों के आधार पर सिद्धान्त विकसित करना' पर्याप्त नहीं है। दोनों वैज्ञानिक एक ही गलत मान्यता के चलते गुमराह हुए थे - वह मान्यता थी कि 2 लीटर वायु में 1 लीटर नाइट्रस वायु मिलाने पर आयतन में अधिकतम कमी हो जाती है, इसके आगे प्रयोग करने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि इससे ज़्यादा कमी तो होनी नहीं है। जैसे लेवॉज़िए ने मई 1775 के अपने शोध-पत्र में लिखा था कि 'पारद भस्म से प्राप्त वायु के साथ एक-तिहाई नाइट्रस वायु मिलाने पर आयतन में उतनी ही कमी हुई जितनी कि साधारण हवा से होती है।' यानी

पेरिस के म्यूज़ियम ऑफ आर्ट एंड क्राफ्ट में लेवॉज़िए की प्रयोगशाला की एक बानगी जहाँ दर्शक लेवॉज़िए के दौर में उपयोग किए जाने वाले गैसोमीटर, कैलोरीमीटर, दर्पण के अलावा लेवॉज़िए के व्यक्तिगत साजो-सामान को देख सकते हैं।

लेवॉज़िए मानकर चल रहे थे कि पारद भस्म से जो वायु प्राप्त हुई है वह साधारण हवा ही है, शायद थोड़ी अधिक शुद्ध है।

बहरहाल, संयोगवश प्रिस्टले ने दूसरे प्रयोग की शेष बची वायु की जाँच करके देखी और कुछ ही माह बाद प्रकाशित अपनी पुस्तक में स्पष्ट किया कि लेवॉज़िए का निष्कर्ष ठीक नहीं है।

यह संयोगवश ही था कि प्रिस्टले ने उक्त प्रयोग को थोड़ा आगे बढ़ाया। प्रिस्टले के शब्दों में,

"मैंने देखा कि नाइट्रस वायु और मर्क्यूरियस केल्सिनेटस से प्राप्त वायु का मिश्रण रात भर रखा रहने के बाद (जिसके आयतन में जितनी कमी होनी थी, वह हो चुकी होगी और इसके परिणामस्वरूप वह श्वसन या दहन के लिए पूरी तरह अनुपयुक्त हो जाना चाहिए था), उसमें मोमबत्ती जल सकी और साधारण हवा से बेहतर जल सकी। इतने समय बाद मुझे यह याद नहीं आ रहा है कि मैंने यह प्रयोग करने का विचार क्यों किया था मगर मुझे इतना याद है कि मुझे इससे कोई खास उम्मीद नहीं थी। इस तरह के प्रयोग करने में काफी उत्सुकता के चलते हल्की-सी व क्षणिक प्रेरणा भी मुझे प्रयोग करने को उकसा देती है। अलबत्ता, यदि किसी अन्य उद्देश्य से वह जलती हुई मोमबत्ती आसपास न रखी होती, तो शायद मैं कभी यह प्रयोग न करता और इस तरह की वायु को लेकर मेरे भावी प्रयोगों की शृंखला शायद रुक ही जाती।"

उन्होंने पाया कि नाइट्रस वायु के साथ परीक्षण के बाद (यानी आयतन घट जाने के बाद) बची गैस मोमबत्ती

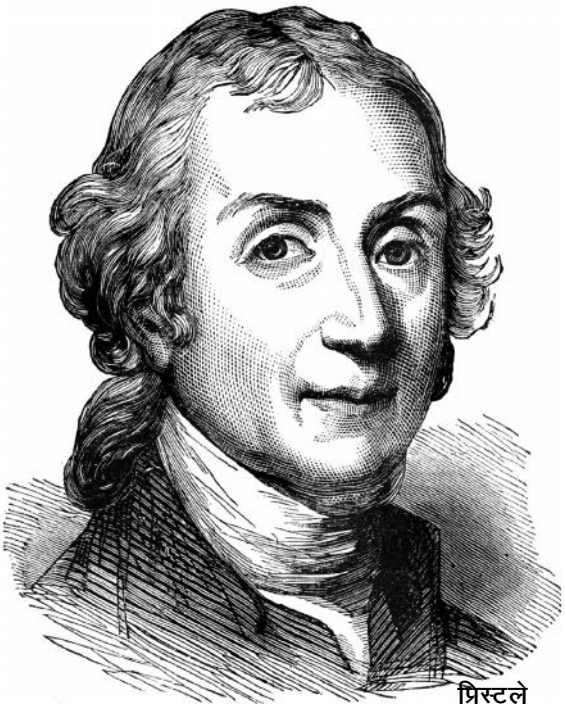

प्रिस्टले

के जलने में सहायता करती रहती है। संयोगवश हुई इस खोज के बाद उन्होंने चूहे के साथ प्रयोग किया और देखा कि चूहा उस बची हुई गैस में भलीभाँति ज़िन्दा रहता है। अब प्रिस्टले को शक हुआ कि जिस वायु की वे छानबीन कर रहे हैं, वह साधारण हवा से बेहतर ही नहीं, भिन्न भी है।

इसकी जाँच के लिए उन्होंने एक प्रयोग किया। उन्होंने कुछ समय तक चूहे को उस वायु में जीने दिया। फिर बची हुई वायु का नाइट्रस वायु परीक्षण किया। पता चला कि कुछ समय तक चूहे द्वारा उपयोग किए जाने के बाद भी यह वायु नाइट्रस वायु से क्रिया करती है और आयतन में कमी पैदा होती है। और तो और, आयतन में यह कमी साधारण वायु की अपेक्षा ज़्यादा होती है।

एक बार जब उन्हें यकीन हो गया कि पारद भस्म से प्राप्त वायु साधारण हवा से बेहतर है, तो उन्होंने ज़्यादा व्यवस्थित प्रयोग शुरू किए। उन्होंने इस वायु की क्रिया नाइट्रस वायु का आयतन बढ़ाते हुए की। उन्होंने पाया कि नवीन वायु के एक आयतन में नाइट्रस वायु साढ़े चार आयतन मिलाने तक आयतन में कमी होती रहती है। गौरतलब है कि साधारण हवा के 2 आयतन में एक आयतन नाइट्रस वायु मिलाने पर आयतन में अधितकम कमी हो जाती थी। इसके बाद और नाइट्रस वायु मिलाने पर आयतन में कमी नहीं होती थी। अर्थात् नवीन वायु साधारण

लेवॉज़िए

हवा से काफी भिन्न थी। इस बात को समझ लेने पर यह स्पष्ट हो जाना चाहिए था कि उनके हाथ में एक नया तत्व है। मगर प्रिस्टले पूरे प्रयोग को एक अलग ही अवधारणात्मक ढाँचे के तहत समझने की कोशिश कर रहे थे।

प्रिस्टले का नज़रिया फ्लॉजिस्टन सिद्धान्त से जुड़ा था। उनके मुताबिक पारद भस्म को गर्म करने पर वह हवा में उपस्थित फ्लॉजिस्टन को सोख लेता है। अतः हवा में फ्लॉजिस्टन की

मात्रा कम नहीं बल्कि खत्म हो जाती है। उनके शब्दों में यह हवा अब फ्लॉजिटन-मुक्त हवा है। चूँकि यह फ्लॉजिस्टन-मुक्त है इसलिए इसमें फ्लॉजिस्टन सोखने की बहुत अधिक क्षमता है। इसलिए यह जलने में साधारण हवा से ज़्यादा मददगार होती है और नाइट्रस वायु के साथ भी ज़्यादा क्रिया करती है। अर्थात् प्रिस्टले के मुताबिक पारद भस्म से प्राप्त वायु कोई नया तत्व नहीं बल्कि फ्लॉजिस्टन-मुक्त हवा थी।

"अब इस नई किस्म की वायु की प्रकृति - कि यह नाइट्रस वायु से ज़्यादा मात्रा में फ्लॉजिस्टन ग्रहण कर सकती है और इसका मतलब है कि इसमें मूलतः इस तत्व की मात्रा कम रही होगी - को लेकर पूरी तरह सन्तुष्ट होने के बाद मेरा अगला सवाल यह था कि किस तरह से यह इतनी शुद्ध हुई है या दूसरे शब्दों में यह इतनी फ्लॉजिस्टन-विहीन कैसे हुई।"

प्रिस्टले के प्रयोग की बात लेवॉज़िए तक भी पहुँच चुकी थी। इसके मद्देनज़र उन्होंने अपने प्रयोग एक बार दोहराए और सर्वथा अलग निष्कर्ष पर पहुँचे। वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचे वह क्रान्तिकारी साबित हुआ, उसने आधुनिक रसायन शास्त्र की नींव रखने का काम किया।

चलिए अब लेवॉज़िए की तर्क शृंखला को देखते हैं। उन्होंने 1775 में फ्रांसीसी विज्ञान अकादमी के समक्ष अपना पर्चा प्रस्तुत किया, जिसका नाम थाः 'ऑन दी नेचर ऑफ दी प्रिंसिपल विच कम्बाइन्स विद मेटल्स ड्यूरिंग केल्सिनेशन एण्ड इन्क्रीज़िज़ देयर वेट' यानी 'वह तत्व जो भस्मीकरण के दौरान धातुओं से जुड़ता है और उनका वज़न बढ़ाता है'। लेवॉज़िए की तर्क शृंखला को समझने में एक रोचक तथ्य से मदद मिली है।

1775 में जब उन्होंने यह पर्चा प्रस्तुत किया तो इसे एक अनाधिकृत शोध पत्रिका में तुरन्त प्रकाशित किया गया था। आम तौर पर ऐसा होता था कि वही पर्चा बाद में अधिकारिक शोध पत्रिका में छापा जाता था। इन दो के बीच काफी समय बीतता था और लेखक को मौका मिल जाता था कि वह अधिकारिक प्रकाशन से पूर्व अपने पर्चे में फेरबदल कर सके। लेवॉज़िए का 1775 में प्रस्तुत पर्चा अधिकारिक रूप से 1778 में प्रकाशित हुआ था और इसमें उन्होंने कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए थे। इन्हें देखकर विज्ञान के इतिहासकारों ने उनके तर्क के विकास को समझने का प्रयास किया है।

प्रथम पर्चे में लगता है कि लेवॉज़िए यह मानकर चल रहे थे कि पारद भस्म को गर्म करके जो गैस बनी है वह सामान्य हवा ही है। मगर बाद में उन्होंने ध्यान दिया था कि यह गैस साधारण हवा से काफी बेहतर है। उपरोक्त दो पर्चों में अन्तर को एक ही वक्तव्य के दो संस्करणों की तुलना करके देखा जा सकता हैः

1775

"भस्मीकरण (केल्सिनेशन) के दौरान जो तत्व धातुओं से जुड़ता है और उनका वज़न बढ़ाता है और जो भस्मों का एक घटक है *वह हवा का कोई अंश नहीं है, न ही हवा में फैला कोई अम्ल है, बल्कि वह हवा ही है*, सम्पूर्ण और बगैर किसी फेरबदल के, बगैर विघटित हुए; यहाँ तक कि इस तरह जुड़ जाने के बाद जब उसे मुक्त किया जाता है, तो यह वायुमण्डलीय हवा से ज़्यादा शुद्ध, ज़्यादा श्वसन-योग्य होकर निकलती है और यह ज्वलन व दहन को सहारा देने में ज़्यादा उपयुक्त होती है।"

1778

"भस्मीकरण (केल्सिनेशन) के दौरान जो तत्व धातुओं से जुड़ता है और उनका वज़न बढ़ाता है और जो भस्मों का एक घटक है *वह और कुछ नहीं हवा का ज़्यादा सेहतमन्द और शुद्धतम अंश है*, इसलिए धातु के साथ जुड़ने के बाद जब यह फिर से मुक्त होता है, तो यह अत्यन्त श्वसन-योग्य स्थिति में होता है, ज्वलन व दहन को सहारा देने के लिए ज़्यादा उपयुक्त होता है।"

मई 1776 में उन्होंने जन्तु श्वसन पर एक शोध पत्र प्रस्तुत किया था जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया था कि हवा के दो घटक होते हैं - इनमें से एक अत्यन्त श्वसन-योग्य होता है जबकि दूसरा घटक दहन या श्वसन को सहारा नहीं देता। हवा के इस अत्यन्त श्वसन-योग्य भाग को लेवॉज़िए ने ऑक्सीजन नाम दिया।

इस तरह से ऑक्सीजन की खोज पूरी हुई। प्रिस्टले फ्लॉजिस्टन और फ्लॉजिस्टन-मुक्त हवा पर अड़े रहे। लेवॉज़िए ने अपने परिणाम की पुष्टि के लिए जिस तरीके का सहारा लिया वह भी गौरतलब है। उनका कहना था कि,

"रसायन शास्त्र वस्तुओं के घटक तत्व पता करने के दो आम तरीके उपलब्ध कराता हैः विश्लेषण की विधि और संश्लेषण की विधि। मसलन, जब पानी को अल्कोहल में मिलाते हैं तो हमें ब्रांडी प्राप्त होती है। तब हमें यह निष्कर्ष निकालने का अधिकार है कि ब्रांडी पानी और अल्कोहल से मिलकर बनी है। यही परिणाम हम विश्लेषण की विधि से भी हासिल कर सकते हैं। और इसे रसायन शास्त्र का एक सिद्धान्त माना जाना चाहिए कि इन दोनों किस्मों के प्रमाणों के बिना सन्तोष न किया जाए। वायुमण्डलीय हवा के विश्लेषण में हमें यह फायदा हैः इसे वियोजित किया जा सकता है और नए सिरे से बनाया भी जा सकता है।

मैंने करीब 36 घन इंच क्षमता का एक फ्लास्क लिया जिसकी लम्बी गर्दन मुड़ी हुई थी जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। इस फ्लास्क को मैंने भट्टी में इस तरह रखा कि इसकी गर्दन का सिरा पारे के नाद में उल्टे रखे एक बेल जार में प्रविष्ट कराया जा सके। फ्लास्क में मैंने 4 औंस शुद्ध पारा रखा

और ग्राही (बेल जार) में से सायफन की मदद से हवा निकाल दी ताकि पारे का तल ऊपर चढ़ जाए। बेल जार में पारा जिस ऊँचाई पर था, उसे कागज़ की एक चिप्पी चिपकाकर चिन्हित कर दिया। अब तापमापी व दाबमापी का सही पाठ लेने के बाद मैंने भट्टी में आग जला दी और उसे लगातार 12 दिन तक चालू रखा ताकि पारा लगभग अपने क्वथनांक पर रहे। पहले दिन उल्लेखनीय कुछ भी नहीं हुआ। हालाँकि, पारा उबल नहीं रहा था मगर लगातार वाष्पित हो रहा था और इसने बर्तन (फ्लास्क) की अन्दरूनी सतह को बारीक-बारीक बूंदों से ढँक दिया। ये बारीक बूंदें धीरे-धीरे बड़ी होती थीं और फिर बर्तन के पेन्दे में रखे पारे में टपक जाती थीं। दूसरे दिन पारे की सतह पर छोटे-छोटे लाल कण दिखने लगे; अगले 4-5 दिनों में ये कण संख्या व साइज़, दोनों में बढ़ते गए, जिसके बाद दोनों ही लिहाज़ से इनकी वृद्धि रुक गई। बारह दिन पूरे होने पर, यह मानकर कि पारे का और भस्मीकरण नहीं हो रहा है, मैंने आग बुझा दी और बर्तन को ठण्डा होने दिया।

प्रयोग के शुरू में फ्लास्क, उसकी गर्दन तथा बेल जार में कुल मिलाकर करीब 50 घन इंच हवा थी। उसी तापमान व दबाव पर प्रयोग के अन्त में 42-43 घन इंच हवा शेष रही थी। यानी हवा के आयतन में 1/6 (छठवें भाग) की कमी आई थी। जब प्रयोग में बने सारे लाल कणों को इकट्ठा करके तोला गया तो उनका वज़न 45 ग्रेन निकला।

मुझे यह प्रयोग कई बार दोहराना पड़ा क्योंकि एक बार करने पर यह बहुत मुश्किल होता है कि हवा को पूरी तरह सुरक्षित रखा जा सके और सारे लाल कण यानी पारद भस्म को इकट्ठा किया जा सके।

पारे के भस्मीकरण के बाद जो हवा शेष बची वह शुरू में ली गई हवा की 5/6 भाग थी और श्वसन या दहन के लिए उपयुक्त नहीं रह गई थी।* इसमें जन्तुओं को छोड़ने पर चन्द सेकंडों में ही उनका दम घुट जाता था। जलती हुई मोमबत्ती को इसमें ले जाने पर वह ऐसे बुझ जाती थी, जैसे कि पानी में डुबा दिया गया हो।

इस प्रयोग के साथ ही हवा का विश्लेषण पूरा हुआ। पारे की मदद से 50 घन इंच हवा का पृथक्करण हुआ और 42-43 घन इंच श्वसन व दहन के अयोग्य हवा बची जबकि 7-8 घन इंच हवा पारे से जुड़ी।"

इसके बाद लेवॉज़िए ने पारद भस्म (45 ग्रेन) को गर्म किया। इससे इन्हें 7-8 घन इंच गैसें प्राप्त हुईं और 41.5 ग्रेन पारा बचा। अर्थात् इस 7-8 घन इंच गैस का वज़न 3.5 ग्रेन होना

* *इस बची हुई गैस को मेफिटिक वायु कहते थे, लेवॉज़िए ने इसे एज़ोट नाम दिया था और आजकल हम इसे नाइट्रोजन कहते हैं।*

चाहिए। इस आधार पर इसका घनत्व 3.5 ग्रेन/7 घन इंच से 3.5 ग्रेन/8 घन इंच के बीच होगा - 0.5-0.44 ग्रेन प्रति घन इंच।

लेवॉज़िए के शब्दों में, "वायुमण्डलीय हवा दो गैसों से मिलकर बनी है जिनके गुण अलग-अलग व परस्पर विपरीत हैं। इस महत्वपूर्ण सत्य का प्रमाण यह है कि यदि हम उपरोक्त प्रयोग में अलग-अलग हो गई गैसों - यानी 42 घन इंच मेफिटिक वायु और 8 घन इंच श्वसन-योग्य वायु - को फिर से मिला दें, तो हमें ठीक वायुमण्डलीय हवा जैसी हवा मिल जाती है।" यह संश्लेषण का प्रमाण है।

अब लेवॉज़िए के सामने एक ही काम बचा था। समस्त रासायनिक क्रियाओं को ऑक्सीजन के परिप्रेक्ष्य में व्यक्त करना। जैसे 1766 में अँग्रेज़ वैज्ञानिक हेनरी केवेंडिश ने लोहे पर तनु गंधक-अम्ल की क्रिया से 'ज्वलनशील वायु' बना ली थी। आजकल की भाषा में इसे हम हाइड्रोजन कहते हैं। यह गैस हवा में जलाने पर जल उठती थी। लेवॉज़िए के हिसाब से तो जलने का मतलब था ऑक्सीजन से जुड़ना। उनके लिए बहुत ज़रूरी था कि ज्वलनशील वायु के जलने की व्याख्या ऑक्सीजन सिद्धान्त के अन्तर्गत करें। कैसे?

जैसे कि उम्मीद की जानी चाहिए, प्रिस्टले ने भी इस 'ज्वलनशील वायु' पर प्रयोग किए थे। उन्होंने देखा था कि जब एक बन्द बर्तन मे ज्वलनशील गैस और सामान्य हवा को भरकर एक चिंगारी की मदद से जलाया जाता है, तो बर्तन की दीवार पर ओस जमा हो जाती है। जब केवेंडिश ने इस प्रयोग को दोहराया तो उन्होंने पाया कि यह ओस पानी ही है। केवेंडिश ने इस पूरे प्रयोग की व्याख्या फ्लॉजिस्टन सिद्धान्त के तहत की। उन्होंने अटकल लगाई कि जलने से पहले दोनों वायुओं में पानी उपस्थित था। बल्कि केवेंडिश ने तो यह तक कहा कि 'ज्वलनशील वायु' के रूप में उन्होंने साकार फ्लॉजिस्टन खोज लिया है।

दूसरी ओर, लेवॉज़िए का मत था कि 'ज्वलनशील वायु' ऑक्सीजन से क्रिया करके पानी बनाती है। उनका निष्कर्ष था कि पानी भी कोई तत्व नहीं है बल्कि 'ज्वलनशील वायु' और ऑक्सीजन का यौगिक है।

गौरतलब है कि ऑक्सीजन की खोज करते-करते पंचतत्वों में से तीन तो अपनी तात्विक हैसियत गँवा चुके हैं - वायु (जिसे एक मिश्रण साबित कर दिया गया है), जल (जिसे अब यौगिक दर्शा दिया गया है) और अग्नि।

खैर, बड़ी-बड़ी बातें छोड़कर यह देखें कि ऑक्सीजन का क्या हुआ। लेवॉज़िए की धारणा थी कि ज्वलनशील वायु और ऑक्सीजन की क्रिया से पानी बन जाता है। और उन्होंने इसका प्रमाण प्रस्तुत किया, पानी के अपघटन से ज्वलनशील वायु बनाकर।

यह तो पता ही था कि जब किसी

धातु को अम्ल के घोल में डाला जाता है तो नमक और ज्वलनशील वायु बनती है:

धातु + अम्ल + पानी → लवण + ज्वलनशील वायु

केवेंडिश तो ज्वलनशील वायु को फ्लॉजिस्टन मानते थे। उनके अनुसार

धातु (भस्म + फ्लॉजिस्टन) + अम्ल + पानी → लवण (भस्म + अम्ल) + ज्वलनशील वायु (फ्लॉजिस्टन)

अब चूँकि पानी का संघटन पता चल चुका था, लेवॉज़िए ने इसी क्रिया की एक अलग व्याख्या प्रस्तुत की,

धातु + अम्ल (ज्वलनशील वायु + ऑक्सीजन) + पानी → लवण (धातु + अम्ल) + ज्वलनशील वायु

इसके साथ ही ऑक्सीजन की स्थापना पूरी हुई और लेवॉज़िए के मुताबिक वक्त आ गया था कि "रसायन शास्त्र को हर उस बाधा से मुक्त किया जाए, जो उसकी प्रगति को रोकती है।" और लेवॉज़िए इस काम में पूरी शिद्दत से जुट गए। इसमें उनके साथ रहे लुई बर्नार्ड गायटन डी मोर्वो, क्लॉड लुई बर्थोलेट, एन्तोन प्रेंक फोरक्राय। इन लोगों ने मिलकर नए रसायन शास्त्र के लिए पूरी भाषा गढ़ी क्योंकि लेवॉज़िए मानते थे कि "हम किसी विज्ञान की भाषा में तब तक सुधार नहीं कर सकते जब तक कि साथ में स्वयं विज्ञान में सुधार न करें, तथा दूसरी ओर, हम विज्ञान को तब तक सुधार नहीं सकते जब तक कि उससे जुड़ी भाषा या नामकरण को न सुधारें।"

- समापन किस्त

सुशील जोशी: एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।